विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५३१ कार्तिक पूर्णिमा ५ नवम्बर १९८७ वर्ष १७ अंक ५

धम्मवाणी

अत्ता हि अत्तनो नाथो, अत्ता हि अत्तनो गति ।
तस्मा सञ्ञमयत्तानं, अस्सं भद्रंव वाणिजो ।।

धम्मपद — २५/२१

व्यक्ति स्वयं ही अपना स्वामी है, स्वयं ही अपनी गति है। इसलिए अपने आप को संयत करे, वैसे ही जैसे कि अच्छे घोड़ों का व्यापारी अपने घोड़ों को करता है।

क्या होता है मृत्यु के समय?

इसे समझने के पहले थोड़े में यह समझ लें कि मृत्यु है क्या?

मृत्यु सतत् प्रवाहमान परिवर्तनशील नदी जैसी भवधारा की एक मोड़ है, उसका एक पलटाव है, एक घुमाव है। लगता यों है कि मृत्यु हुई तो भवधारा ही समाप्त हो गयी। परन्तु बुद्ध या अर्हंत हो तो बात अलग है अन्यथा सामान्य व्यक्ति की भवधारा मरणोपरान्त भी प्रवाहमान ही रहती है। मृत्यु एक जीवन की लीला समाप्त करती है और अगले ही क्षण दूसरे जीवन की लीला आरंभ कर देती है। मृत्यु के एक ओर इस जीवन का अंतिम क्षण तो दूसरी ओर अगले जीवन का प्रथम क्षण। मानो सूर्यास्त होते ही तत्काल सूर्योदय हो गया। बीच में रात्रि के अंधकार का कोई अंतराल नहीं आया। या यों कहें कि मृत्यु के क्षण अनगिणित अध्यायोंवाली भवधारा की पुस्तक का एक जीवन-अध्याय समाप्त हुआ, परन्तु अगले ही क्षण दूसरा अध्याय आरंभ हो गया।

जीवन के प्रवाह को और मृत्यु को ठीक ठीक समझने समझाने के लिए कोई सौ फीसदी सांगोपांग उपमा ध्यान में नहीं आती। फिर भी एक प्रकार से यह कह सकते हैं कि भवधारा रेल की पटरी पर चलनेवाली उस गाड़ी के समान है जो कि मृत्यु रूपी स्टेशन तक पहुँचती है और वहाँ क्षण भर के लिए अपनी गति जरा मंद कर अगले ही क्षण उसी वेग से आगे बढ़ जाती है। स्टेशन पर गाड़ी पूरे एक क्षण के लिए भी रुकती नहीं। इसे कहीं रुकने की फुरसत नहीं है। सामान्य साधारण व्यक्ति के लिए मृत्यु की स्टेशन कोई टर्मिनस नहीं है बल्कि एक जंक्शन है जहाँ से भिन्न भिन्न दिशा में जानेवाली ३१ पटरियाँ फूँटती हैं। जीवन की रेलगाड़ी जंक्शन पर पहुँचते ही इनमें से किसी एक पटरी पर मुड़कर आगे बढ़ चलती है। कर्म-संस्कारों के विद्युतबल से चलती रहनेवाली इस वेगवती जीवनवाहिनी के लिए मृत्यु का जंक्शन कोई पड़ाव नहीं है, कोई ठिकाव नहीं हैं। वह बिना रुके इस स्टेशन पर से गुजरती हुई आगे बढ़ चलती है। हर जीवन एक जंक्शन से दूसरे जंक्शन तक की रेल-यात्रा है। ऐसी यात्रा जो इन जंक्शनों पर से गुजरती हुई आगे बढ़ती ही रहती है।

या यों कहें कि जीवन-दीपक की एक लौ बुझती है और अगले ही क्षण दूसरी जल उठती है। एक लौ क्यों बुझी? या तो जीवन-दीपक का तेल खत्म हो गया या बाती खत्म हो गयी या दोनों एक साथ खत्म हो गए। अथवा दोनों के रहते हुए हवा का कोई ऐसा तेज झोंका आया जिससे कि लौ बुझ गयी। याने आयुष्य पूरा हो गया अथवा भवकर्म पूरे हो गए अथवा दोनों एक साथ पूरे हो गए अथवा कोई ऐसी कर्मिक दुर्घटना घटी कि दोनों के रहते हुए भी जीवन लौ बुझ गयी। परन्तु यदि व्यक्ति भवमुक्त अर्हंत नहीं है और उसके भवकर्म समाप्त नहीं हुए हैं तो बुझते ही नयी लौ फिर जल उठती है।

शरीरकी च्युति हुई परन्तु भवधारा का प्रवाह नहीं रुका। अगले क्षण किसी अन्य शरीर को वाहन बनाकर क्षण क्षण उत्पाद-व्यय स्वभाववाली चित्त की चेतन भवधारा प्रवाहमान बनी रही। यही हुआ। गाड़ी चलती रही पर जंक्शनवाली स्टेशन पर आकर बिना रुके पटरी बदल ली।

यह पटरी बदलने का काम प्रकृति के बंधे-बंधाए नियमों के अनुसार अपने आप हो जाता है। जैसे दिन डूबता है और रात शुरू हो जाती है। रात डूबती है और दिन शुरू हो जाता है। बरफ गरमाती है पानी बन जाती है। पानी ठंडाता है बर्फ बन जाता है। कुदरत के बंधे-बंधाए नियम हैं। पटरी बदलने का काम प्रकृति करती है या यों कहें कि प्रकृति के नियमों के अनुसार स्वयं गाड़ी ही करती है। गाड़ी स्वयं अपने लिए अगली पटरी का निर्माण कर लेती है। वर्तमान जीवन की पटरी पूर्व जीवन की पटरी में से निकली है और अगले जीवन की पटरी इस जीवन की पटरी में से ही निकलेगी। भवधारा की इस रेलगाड़ी के लिए पटरी बदलनेवाली मृत्युरूपी जंक्शन का एक विशिष्ट महत्व है। यहाँ गाड़ी की एक पटरी छूटती है जिसे शरीर-च्युति कहते हैं और तत्क्षण दूसरी पटरी आरंभ हो जाती है जिसे प्रतिसंधि कहते हैं। हर प्रतिसंधि-क्षण शरीर के च्युति-क्षण का ही परिणाम है। हर शरीर-च्युति-क्षण प्रतिसंधि रूपी अगली पटरी का निर्माण करता है, चुनाव करता है। व्यक्ति स्वयं अपने पूर्व जन्म की संतान है और अगले जन्म का जनक है। हर मृत्यु का क्षण अगले जन्म का प्रजनन करता है। इसलिए मृत्यु मृत्यु ही नहीं, जन्म भी है। इस जंक्शन पर जीवन मृत्यु में बदल जाता है और मृत्यु जन्म में बदल जाती है। यहाँ रेलगाड़ी की यात्रा पूर नहीं होती। गाड़ी में जब तक कर्म-संस्कारों की स्टीम है या इलेक्ट्रिक करंट है तब तक वह आगे बढ़ती ही जायेगी और हर जंक्शन पर उसके लिए पटरियाँ बिछी हुई तैयार मिलेंगी, जिनमें से एक पर सवार होकर वह आगे बढ़ती रहेगी। भवयात्रा पूरी नहीं होती। हर मृत्यु नए जीवन का आरंभ है। हर जीवन अगली मृत्यु की तैयारी है।

समझदार व्यक्ति हो तो अपने जीवन का अच्छा उपयोग करे। अच्छी मृत्यु की तैयारी करे। सबसे अच्छी मृत्यु तो वह जो कि अंतिम हो। जंक्शन न हो, बल्कि टर्मिनस हो, अंतिम स्टेशन हो। भवयात्रा की

समाप्ति हो। उसके आगे गाड़ी चलने के लिए पटरियों का बिछावन हो ही नहीं। परंन्तु जब तक ऐसा टर्मिनस प्राप्त नहीं होता तब तक इतना तो हो कि आनेवाली मृत्यु आगे के लिए अच्छी पटरियाँ लेकर आए और कुछ एक जंक्शनों के बाद गाड़ी टर्मिनस पर जा पहुँचे। यह सब स्वयं हम पर निर्भर करता है। हम स्वयं अपने मालिक हैं, कोई दूसरा नहीं। हम स्वयं अपनी गति बनानेवाले हैं — दुर्गति, सुगति अथवा गति-निरोध टर्मिनस। कोई दूसरा हमारे लिए कुछ नहीं बनाता। अत: हम अपने प्रति अपनी जिम्मेदारी को समझें और उसे समझदारी के साथ पूरा करें।

भवधारा को आगे गति देनेवाली पटरियाँ कैसें हम स्वयं ही अपने कर्मों द्वारा बनाते रहते हैं इसे समझें।

कर्म क्या हैं? चित्त की चेतना ही कर्म है। मन, वाणी और शरीर से कोई कर्म करने के पूर्व चित्त में जो चेतना जागती है वही कर्मबीज है, वही कर्म-संस्कार है। यह कर्म-संस्कार अनेक प्रकार के होते हैं। चेतना कितनी तीव्र? कितनी मंदी? कितनी गहरी? कितनी छिछली? कितनी भारी? कितनी हल्की? उसी अनुपात से सघन कर्म-संस्कार बने, पानी या बालू या पत्थर की लकीरवाले। चेतना पुण्यमयी है याने चित्त को पुनीत बनानेवाली है तो कर्म-संस्कार कुशल है, अच्छा है, शुभफलदायी है। चेतना पापमयी है याने चित्त को दूषित करनेवाली है तो कर्म-संस्कार अकुशल है, अशुभफलदायी है।

सभी कर्म-संस्कार नया जन्म देनेवाले भवसंस्कार नहीं होते। कुछ तो इतने हल्के होते हैं कि जिनका कोई महत्वपूर्ण फल ही नहीं आता। कुछ उससे जरा भारी जिनका फल तो आता है पर इसी जीवन में आकर पूरा हो जाता है, अगले जीवन तक भवंग के साथ नहीं चलता। कुछ और अधिक भारी जो नया जन्म देने की शक्ति तो नहीं रखते पर भवधारा के भवंग में साथ साथ चलते हैं और अगले जन्म अथवा जन्मों में अन्य किन्हीं कारणों से जो सुख-दु:ख आते हैं उनका संवर्धन विवर्धन करने में सहायक होते हैं।

लेकिन अनेक कर्म ऐसे हैं जो कि भवकर्म हैं; नया जन्म, नया भव निर्माण करने में समर्थ। हर भव कर्म में एक चुम्बकीय शक्ति होती है जिसकी तरंगे किसी एक भव लोक की तरंगों से मेल खाती हैं। जिस भवकर्म की तरंगों का जिस भवलोक की तरंगों से पूर्ण सामंजस्य होता है, विश्व व्यापी विद्युत चुम्बकीय शक्तियों के अटूट नियमों के आधार पर वे दोनों एक दूसरे की ओर खिंचते रहते हैं। हम जैसे ही कोई भवकर्म करते हैं, हमारी भवधारा की रेलगाड़ी ३१ पटरियों की तत्संबंधित पटरी से उन विद्युत तरंगों द्वारा संयुक्त हो जाती है।

काम भवलोक की ११ भूमियाँ — चार दुर्गति की और ७ मनुष्य एवं देव योनियोंवाली सुगति की, रूप ब्रह्म भवलोक की १६ भूमियाँ, अरूप ब्रह्म भवलोक की ४ भूमियाँ। तीन भवलोकों की यह ३१ भूमियाँ। इन्हें ही हम ३१ पटरियाँ कहें।

इस जीवन के अंतिम क्षण के समय चित्तधारा के भवंग में समाए हुए जिस भवकर्म की उदीर्णा होगी याने जो भवसंस्कार प्रकट होगा, चित्तधारा उसकी विद्युत चुंबकीय तरंगों से तरंगित हो उठेगी और वैसी ही तरंगों से तरंगित पटरियों वाले प्रभावकेन्द्र के गुरुत्वाकर्षण से खिंचती हुई उनसे जा जुड़ेगी। मृत्यु के क्षण जीवन की रेलगाड़ी के सामने ३१ पटरियों का विशाल क्षेत्र उपस्थित है। परन्तु उस क्षण हमारी गाड़ी जिन विद्युत तरंगों से संचालित हो रही है उन्हीं तरंगों के अनुकूल तरंगोंवाली पटरी से आकर्षित होकर उसी से प्रतिसंधित होगी। अन्य से नहीं। याने भवधारा रूपी रेलगाड़ी की उसी पटरी से शंटिंग हो जायेगी और वह उसी पटरी पर आगे चल पड़ेगी। गाड़ी की शंटिंग का यह क्षण बड़ा महत्वपूर्ण है। इस समय जो तरंगें रेलगाड़ी को तरंगित करती हैं वही तरंगें अगली पटरी का चुनाव करती हैं। दोनों एक दूसरे से स्वत: खिंचती हैं, आकर्षित होती हैं। ऐसा कुदरत का नियम है। ये ये कारण उपस्थित हों तो ऐसा कार्य स्वत: सम्पन्न हो ही जायेगा।

मसलन क्रोध या द्वेष की चेतनावाला भवकर्म-संस्कार उत्तापन और पीड़ा के स्वभाव का होने के कारण अधोगतिवाली किसी भूमि से ही जुड़ेगा। इसी प्रकार मंगल मैत्री की चेतना वाला भव कर्म-संस्कार शांति और शीतलता की तरंगों के स्वभाववाला होने के कारण ब्रह्मलोक की किसी भूमि से ही जुड़ेगा। यह कुदरत का स्वत: संचालित बंधा-बंधाया नियम है। विशाल प्रकृति के निर्धारित नियमों का सारा पैटर्न इस कदर आश्चर्यजनक ढंग से सुपर कम्प्युटराइज्ड है कि इसमें कहीं कोई भूल नहीं होती।

मरणासन्न अवस्था में सामान्यतया कोई अत्यंत गुरु कर्म ही उभरकर आता है। अच्छा या बुरा। जैसे इसी जीवन में माता-पिता या संत-अर्हंत की हत्या की हो तो उस घटना की याद चित्त पर उभरेगी अथवा बहुत गहरी ध्यान साधना की हो तो उसकी याद चित्त पर उभरेगी। परन्तु जब कोई इतना गहरा भवकर्म न हो तो उससे जरा कम सघन भवकर्म प्रकट होगा। मरणासन्न अवस्था में जिस भवकर्म की याद उभरती है बहुधा उसके चिन्ह दीखते हैं अथवा अन्य पाँचों इंद्रियों में से किसी पर उभरते हैं। उन्हें कर्म और कर्म-निमित्त याने कर्म-चिन्ह कहते हैं। उस समय जिस अगले भवलोक से प्रतिसंधि होनेवाली है याने जंक्शन के सामने जिन पटरियों से शंटिंग होनेवाली है मानो उन पर प्रकाश पड़ता है और मरणासन्न व्यक्ति को बहुधा वह गति-निमित्त याने गति का चिन्ह भी दिखता है या किसी अन्य इन्द्रिय पर उभरता है।

कर्म निमित्त और गति निमित्त की विद्युत चुम्बकीय तरंगें एक जैसी होती हैं। या यों कहें कि मरणासन्न चित्त पर उभरे कर्म की ओर अगली भवभूमि की तरंगें एक जैसी होती हैं। इस भव की गाड़ी उस समय प्रकट हुए अगले भव की पटरी से जा जुड़ती है। अच्छा विपश्यी साधक हो तो मरणासन्न अवस्था में प्रतिकूल भूमिवाली पटरी से बचने की क्षमता प्राप्त कर लेता है।

अच्छा विपश्यी साधक प्रकृति के इन अटूट नियमों को समझता हुआ हर अवस्था में मृत्यु के लिए तैयार रहने की साधना करता है। प्रौढ़ अवस्था को पहुँच गया हो तो और अधिक सजग रहने की तैयारियाँ शुरू कर देता है। क्या तैयारी करता है? विपश्यना द्वारा अपने शरीर और चित्त पर प्रकट होनेवाली हर प्रकार की संवेदना को तटस्थभाव से देखने का अभ्यास करता है तो अपने मानस के उस स्वभाव को तोड़ता है जो कि अप्रिय संवेदनाओं के उत्पन्न होने पर नए नए अकुशल संस्कार बनाने का आदी हो गया था। बहुधा मृत्यु के समीप की अवस्था में स्वभावजन्य संस्कार ही बनते हैं। और जैसा नया संस्कार बन रहा है उसी से मेल खाता हुआ कोई पुराना भव संस्कार उभरने का मौका पाता है। मृत्यु समीप

आने लगती है तो अप्रिय संवेदनाओं में से ही गुजरने की अधिक संभावना रहती है। जरा, व्याधि और मरण दु:खदायी हैं याने दु:ख-संवेदनावाले हैं। यदि कोई असाधक हो अथवा कच्चा साधक हो तो इनसे व्याकुल होकर क्रोध, द्वेष या चिड़चिड़ाहट की प्रतिक्रिया करता है और उसी प्रकार के किसी पुराने अकुशल भव संस्कार को जगने का अवसर देता है। परन्तु किसी परम साधिका माता रामीदेवी की तरह या साधक रतिलालभाई की तरह इन असह्य पीड़ाजनक संवेदनाओं को भी तटस्थभाव से देखने का काम करता है तो मरणासन्न अवस्था में ऐसे अधोगति की ओर ले जानेवाले भव संस्कार भवंग में दबे हों तो भी उन्हें उभरने का मौका नहीं मिलता। इसी प्रकार सामान्य व्यक्ति भविष्य के प्रति सदा आशंकित, आतंकित रहने के स्वभाववाला होता है तो मृत्यु की संभावना से भयभीत हो उठता है और भय से संबंधित किसी भवसंस्कार की उदीर्णा का अवसर पैदा करता है अथवा स्वजनों की संगति से बिछुड़ने की कल्पना मात्र से दुखित हो उठता है तो मृत्यु के समय बिछोह का दु:ख जागता है जो कि उस जैसे अकुशल भवसंस्कार जगाने में सहायक होता है। विपश्यी साधक दु:ख और भय की संवेदनाओं को साक्षीभाव से देखता हुआ इन संस्कारों को दुर्बल बनाता है, मृत्यु के समय उभरने नहीं देता।

मृत्यु की सही तैयारी यही है कि बार बार अपने चित्त और शरीर पर जगी हुई संवेदनाओं को अनित्यबोध के आधार पर समता से देखने के आदी बनें तो मरणासन्न अवस्था में चित्तधारा पर यही समता का स्वभाव स्वत: प्रकट होगा और गाडी ऐसी पटरी से ही जुड़ेगी जिस पर सवार होकर साधक अगली भवभूमि में भी विपश्यना करता रह सके। इस प्रकार अधोगति से बचता हुआ सद्गति प्राप्त कर लेगा, क्योंकि अधोगति की भूमियों में विपश्यना नहीं की जा सकती।

ऐसी मंगल मृत्यु प्राप्त करने में मरणासन्न साधक के निकटस्थ परिवारवाले भी सहायक बनते हैं। उस समय साधना का धर्ममय वातावरण बनाए रखते हैं। न कोई रोता है, न विलाप करता है, न बिछुड़न के संताप की तरंगें पैदा करता है। विपश्यना और मंगल मैत्री की तरंगें वातावरण को मंगलमरण के अनुकूल बनाती हैं।

कभी विपश्यना न करनेवाला व्यक्ति भी मृत्यु के समय दान, शील आदि कुशल भव संस्कारों की उदीरणा होने पर सद्गति तो प्राप्त करता है परन्तु विपश्यी की विशेषता यह है कि वह उस भूमि में प्रतिसंधि प्राप्त कर विपश्यना के अभ्यास को कायम रख सकने में सफल होता है और इस प्रकार चित्तधारा के भवंग में संग्रहित अनेक भवसंस्कारों की राशि को शनै: शनै: क्षय करता हुआ अपनी भवयात्रा को ओछी कर लेता है और देर सबेर टर्मिनस पर जा पहुँचता है।

साधको ! बड़े पुण्य से विपश्यना प्राप्त हुई है। इसके अभ्यास से मनुष्य जीवन सफल सार्थक बनाएँ। मृत्यु जब भी आए समता की चित्तभूमि पर ही आए। मंगल का संदेश लिए हुए ही आए।

मंगल मित्र,
सं. ना. गो.

साधकों के उद्‌गार

पूना में कैथोलिक बिशप कान्फरेंस आफ इंडिया द्वारा संचालित "नेशनल वोकेशन सर्विस सेंटर" (एन.वी.एस.सी.) में विद्यार्थी अपनी शिक्षा पूरी होने पर वर्ष भर के लिए पादरी और साध्वी की ट्रेनिंग लेने के बाद धर्म-प्रचार के लिए देश के विभिन्न भागों में भेजे जाते हैं। यह ट्रेनिंग पूरी होने पर उन्हें कहीं भेजने के पूर्व विपश्यना द्वारा धर्म का व्यावहारिक अभ्यास कराने में रुचि रखने वाले इसके कार्यक्रम-निदेशक (प्रोग्राम डाइरेक्टर) फादर पीटर लार्ड्स लिखते हैं, "आपके शिविरों में हम अपने विद्यार्थियों को नियमितरूप से भेजते रहे हैं। गत वर्ष जनवरी/फरवरी में मैं स्वयं भी दस दिनके शिविर में उनके साथ गया। हमारी यह अभिलाषा है कि हम उन्हें आपके साथ अनोखा अनुभव प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करते रहें। इस वर्ष डॉ. पंत एवं हंसमुखभाई ने उन्हें अपने प्रवचनों से काफी प्रभावित किया।

भविष्य में हम उन्हें शिविर में भेजने के पहले विपश्यना के परिचयात्मक प्रवचनवाली आपकी विडियो कैसेट दिखाया करेंगे। कृपया ऐसी एक विडियो कैसेट दिलवाने की व्यवस्था करेंगे।"

वे एक अन्य पत्र में लिखते हैं, "हमारे विद्यार्थियों को इस विपश्यना केन्द्र के जरिए ऐसा अनोखा अनुभव कराने के लिए मैं अपना आभार व्यक्त करना चाहता हूँ। उनका (विद्यार्थियों का) कहना है कि वे इससे बहुत प्रभावित और लाभान्वित हुए हैं। डॉ. पंतजी द्वारा यहाँ पर जो परिचयात्मक प्रवचन दिया गया था वह उनके लिए शिविर के पहले दिन से ही निष्ठापूर्वक काम करने के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। सबने आप द्वारा प्रश्नोत्तर के लिए दिए गए समय की बड़ी प्रशंसा की।

इस सब के लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ। मैं आशा करता हूँ कि वे आपका दैनिक दर्शन अवश्य करते रहेंगे।मैं आगामी फरवरी८८ के प्रथम सप्ताह में एक दूसरा समूह भेजने जा रहा हूँ। आशा करता हूँ कि उस समय के दौरान धम्मगिरि पर कोई शिविर अवश्य होगा।"

सूरत की रहनेवाली साधिका श्रीमती मालतीबेन खोखानी जो कि गत मई/जून ८७ के आणंद में लगे सहायक आचार्य के शिविर में पहली बार सम्मिलित हुई और दैनिक अभ्यास नियमित करती रही, धर्म में पुष्ट होने के लिए पुन: शिविर में भाग लेने इगतपुरी आयी। वह लिखती है, "अब बड़ी शांति अनुभव कर रही हूँ। पहले इतनी चिड़चिड़ी थी कि छोटी छोटी बातों पर भी उद्विग्न हो उठती थी, उसमें कमी आयी है। गुस्सा तो अब कभी कभार ही आता है। रात की नींद गायब हो गयी थी परन्तु अब ठीक से सो पाती हूँ।"

सिकन्दराबाद की श्रीमती कंचनबहन ठक्कार लिखती हैं, "बचपन से ही सत्यमार्ग पर चलने की इच्छा रही परन्तु पारिवारिक परंपरा के अनुसार कर्मकांडों के आसान मार्ग का सहारा लेकर चल रही थी। पर कोई समाधान नहीं हो रहा था। मन को शांति नहीं मिल रही थी।

१९८० में मुझे विपश्यना साधना करने का सुअवसर मिला, तब से मेरे जीवन का मोड़ बदल गया। धीरे धीरे मैंने २२ शिविर किए और अन्दर के विकार निकलने लगे। मेरा समताभाव एवं साक्षीभाव बढ़ने लगा। आंतरिक शांति मिलने लगी जो सचमुच सुखदायी साबित हुई।

सुश्री शांतिबहन की प्रेरणा पाकर शिविर में सेवा करने की खुशी के साथ मन में संदेह भी था कि क्या सेवा करने का लाभ शिविर जितना मिलेगा? लेकिन दस दिन की सेवा के बाद जो सुखमय अनुभव मिला तो लगा कि सचमुच सेवा का लाभ सबको लेना चाहिए।

शिविर के पूर्व मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं था। परन्तु सेवा के काम से मेरे मन में नई चेतना का संचार हुआ। धर्म का इतना बल मिला कि आश्रम में दिन भर दौड़धूप करने पर भी थकावट नहीं महसूस होती थी। अन्तर्मन प्रफुल्लित रहने लगा। कमर-दर्द के कारण शिविर के पहले घर में चलना-फिरना मुश्किल था पर इस बीच यह दर्द पूर्णत: चला गया। घर लौटी तो नार्मल थी। मन प्रसन्नता से भर उठा कि ऐसा धर्मसेवा का अवसर किसी पुण्यशाली को ही मिल सकता है। सब का मंगल हो!"

शरीर - च्युति

नासिक के श्री ढुंडीराज य. देवस्कर विगत दो वर्षों से ध्यानरत थे। उन्होंने गत २० सितम्बर को ८१ वर्ष की पकी उंम्र में सजग, सचेत और शांत अवस्था में शरीर त्याग दिया। उनका पूरा परिवार लगभग पांच वर्ष से विपश्यना के धर्म मार्ग पर अग्रसर है। विपश्यना परिवार उनकी सद्गति की मंगल कामना करता है।

दोहे धरम के

तू ही तेरा ईश्वर, तू ही तेरा नाथ।
दुर्गति तेरे हाथ है, सद्गति तेरे हाथ॥

तू ही कारण जनम का, जग में बारम्बार।
तू ही तारक ब्रह्म है, खोल मुक्ति के द्वार॥

किस अनन्त भव चक्र में, पिसता रहा अबोध।
अब तो होश सँभाल रे! पंथ मुक्ति का शोध॥

मरण काल जगते रहे, राग द्वेश भव बन्ध।
दु:ख चक्र तड़पत रहा, अज्ञानी मतिमंद॥

चित समता में स्थिर रहे, मरणासन्न सुबोध॥
तो होवे भवचक्र का, स्वयं सहज अवरोध॥

मरण काल की चेतना, भवभय हारी होय।
मरण काल की साधना, मुक्ति विधायक होय॥

दूहा धरम रा

अगणत ही थण चूंधिया, अगणत सोयो कोख।
अगणत भव दुख झेलिया, अगणत ही भव सोक॥

जनम जनम भटकत फिरयो, तारक जी रै लार।
कुण तारकजी तारसी, मन को भरम उतार॥

अपणै अपणै करम का, आपा ही करतार।
अपणै बन्धन मुक्ति का, आपां जिम्मेदार॥

अपणी सद्गति दुरगती, अपणै ही आधीन।
आपां बांधां ग्रन्थिया, आपां करस्यां खीण॥

गति निमित्त दीस्यो बिसो, जिसो क करम निमित्त।
बिसो जनम चित होवसी, जिसो मरण को चित्त॥

भव करमां कै भार सूं, विकल हुयो संसार।
विपस्सना कै जोग सूं, उतरै भव को भार॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली - ११० ००७
की मंगल कामनाओं सहित

विपश्यना: विशोधन विन्यास के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक: रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३. दूरभाष: ८६
कार्तिक पूर्णिमा ★ मुद्रण स्थान: विपश्यना प्रेस, धम्मगिरि, इगतपुरी, दूरभाष: ७६, १७६ ★ Nov. 87

वार्षिक शुल्क रु. १०/-
आजीवन शुल्क रु. १००/-

'विपश्यना' रजि. नं. 19156/71
पोस्टल रजि. नं.NS(M)16/87

Licence No. NS 18
to post without prepayment

प्रेषक :
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२ ४०३
(जि. नासिक, महाराष्ट्र, मध्य रेल्वे)